International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(6): 05-09

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(6): 05-09
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 05-07-2015
Accepted: 08-08-2015

यशवन्त प्रजापति
शोधार्थी रु एम. फिल. (हिंदी)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Correspondence
यशवन्त प्रजापति
शोधार्थी रु एम. फिल. (हिंदी)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालयए नई दिल्ली

साहित्यिक अनुसंधान और प्रबंध लेखन सम्बन्धी कुछ आवश्यक बिंदु

यशवन्त प्रजापति

सारांश
साहित्य में किये गए अनुसंधान की प्रकृति और निष्कर्ष वैसा नहीं होता जैसा की वैज्ञानिक विषयों के अनुसन्धान में होता है। साहित्यिक अनुसन्धान उस तरह का है जैसे एक कलाकार एक मूर्ति को बनाकर रखा दिया है, एक अनुसन्धाता का विषय उस बनी हुई मूर्ति से सम्बंधित है जैसे- उस मूर्ति बनाने की प्रक्रिया क्या थी, उसके बनाने में किन -किन तत्वों का प्रयोग किया गया, उन तत्वों का देशकाल परिस्थितियों क्या सम्बन्ध है आदि। अर्थात उसकी शिल्प प्रक्रिया का उदघाटन करना।

शोध
प्रबंध लेखन की भाषा सहज और सरल होनी चाहिए। व्याकरणिक त्रुटियों से बचना चाहिए। वाक्यों का क्रम ऐसा होनाचाहिए कि विचार वाक्य दर वाक्य एक क्रम से खुलते जायँ और स्पष्ट होते चले जाएँ ताकि उनकी तारतम्यता न टूटे।

प्रस्तावना
एम. ए. करने के उपरांत शोध का विचार हमेशा से दिमाग में रहा। परन्तु शोध करने को सोच लेना या कह देना और उसे करना दोनों में अंतर होता है। एक शोधार्थी के रूप में मैंने शोध की प्रविधि को जानने हेतु अध्ययन किया। मुझे सबसे जटिल कुछ चीजें महसूस हुई और उन्हें भली- भांति समझने का प्रयास किया। फिर मन में एक विचार आया क्यों न एक लेख लिखा जाय जिससे उन तमाम शोधार्थियों जिनके यहाँ अच्छा पुस्तकालय न होने से या पुस्तकों के अभाव में शोध प्राविधि के विषय मेंजानकारी जुटाने के लिए काफी मसक्कत करनी पड़ती है। अगर मेरे इस लेख का अंश मात्र भी किसी शोधार्थी के काम आ जाय या उसकी समझदारी में थोड़ा भी विकास हो जाय तो मैं इसकी सार्थकता समझूंगा।

कूट शब्द

साहित्यिक	- साहित्य से सम्बंधित
तथ्यानुसन्धान	- तथ्यों को आधार मानकर किया जाने वाला अनुसन्धान
जिजीविषा	- जीवन जीने की इच्छा
इजाफ़ा	- बढ़ोत्तरी
अनुसंधित्सु	- शोधार्थी
तथ्यवाद	- तथ्यों का आग्रह
ऐकान्तिकता	- निर्जनता, शांत, कोलाहलरहित स्थान
समालोचना	- सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं का सामान रूप से उदघाटन करना
शोध – प्रबंध	- शोधार्थी द्वारा अनुसन्धान कार्य का लिखित पुस्तकाकार रूप
पाद टिप्पणी	- किसी पेज पर अपने विचारों की पुष्टि हेतु अन्य स्रोतों से लिया गया अंश जिसका विवरण उसी पेज में नीचे संकेताक्षरों के द्वारा दिया हो

निष्कर्ष
शोध कार्य एक जटिल और समयबद्ध कार्य है जिसे उसके पूरे तंत्र को जानकर ही समयानुसार किया जा सकता है। जिस प्रकार एक राजमिस्त्री को मकान बनाने के लिए, मकान बनाने की आवश्यक प्रविधि की जानकारी परमावश्यकहै उसी प्रकार

एक शोधार्थी को भी शोध कार्य करने के पूर्व शोध प्राविधि की जानकारी परमावश्यक है। एक अच्छा शोध कार्यसाहित्य, देश, समाज तथा भावी शोधार्थियों के लिए अमूल्य निधि होता है।

लेख

अनुसन्धान मानव जीवन को सुखमय और समृद्ध बनाने हेतु नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए किया गया एक वैज्ञानिकपद्धति से खोज है। जो इस संसार में व्याप्त तो था पर अब तक मानव ज्ञान चक्षुओं से ओझल था। अमेरिकी विश्व कोष में 'रिसर्च' शब्द के विषय में इस प्रकार से लिखा है -"basic research is a continuing search for a new knowledge a stylematic search to meet the chalange of the unknown"

अर्थात

नूतन ज्ञान के लिए निरंतर खोज आधारभूत अनुसन्धान है। व्यवस्थित शोध के द्वारा अज्ञात तथ्य की चुनौती का सामना करना शोध है।*१

अनुसन्धान मानव सभ्यता की समृद्धि और विकास की दिशा में बढ़ती हुई सीढ़ी है। इस संसार में प्रत्येक स्थान की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, जैविक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, परिस्तिथियाँ अलग-अलल हैं। इस दृष्टि से भी ज्ञान के विषय भी अलग अलग हैं। मानव की तर्कशील बुद्धि अपने आसपास की चीजों को भली भांति जान लेना चाहती है वह उसे जानकर किसी नए ज्ञान का सृजन नहीं करता वरन पहले से व्याप्त वस्तु विषयक ज्ञान को, अपनी पूर्व समझ में परिमार्जन कर नई समझ विकसितकरता है यही अनुसन्धान है। "खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अज्ञात को ज्ञात ज्ञात करने का ही भाव है।"*२ जैसे पृथ्वीकी गरूत्वाकर्षण शक्ति तो पृथ्वी निर्माण के समय से ही मौजूद है। परन्तु इसका ज्ञान मनुष्य को तब जाकर हुआ जब न्यूटन नेपेड़ से नीचे गिरते हुए सेब को देखकर इसका कारण ढूढ़ा। पर एक बात और है कि वह सब कुछ जो जान में परिमार्जन करता है वह अनुसन्धान नहीं है जैसे प्रकृति द्वारा समय-समय पर परिवर्तित और प्रभावित करने पर भी हमारी समझ में कुछ वृद्धि होती है पर हम उसे अनुसन्धान नहीं कहेंगे। सामान्य अनुभव और भूल से भी नया ज्ञान मिलता है या समझ में परिमार्जन होता है। पर शोध वह भी नहीं है। क्योंकि "अनुसन्धान में बोधपूर्वक यत्न होता है, योजना कार्य होता है, वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि होती है और निश्चित लक्ष्य की ओर सहज उन्मुखता होती है, जो अन्य क्रियाकलापों में नहीं होते जिनसे मानव की आकस्मिक या अप्रतिक्षित उन्नति होती है। शोध की क्रियाविधि में अधिक औपचारिकता, अनुशासन और आयोजन होते हैं" *3 ज्ञान के अलग-अलग क्षेत्र होने के नाते प्रत्येक क्षेत्र के अनुसंधान की प्रविधियां तथा निष्कर्ष के स्वरूप में थोड़ा अंतर होता है। वैज्ञानिक विषयों के अनुसन्धान के निष्कर्ष देशकाल निरपेक्ष होते हैं अर्थात उनका निष्कर्ष पूरे धरती पर किसी भी कोने में वही रहता है जैसे- हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सीजन के एक अणु मिलाने पर जल बनता है इस निष्कर्ष का भारत में जो परिणामहोगा वही अमेरिका में भी वैज्ञानिक विषयों के निष्कर्षों को पुनः दुहराने पर भी वही निष्कर्ष प्राप्त होता है। सामाजिक विषयों के निष्कर्ष देश कल निरपेक्ष नहीं होते कारण कि उनका निष्कर्ष मानव जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों से जुड़े होते हैं जो देशकाल परिस्थितियों के अनुसार खुद परिवर्तित हो सकते हैं। अनुसन्धान के प्रकृति के विषय में पश्चिमी विद्वान डेविड बाप कहते हैं -"नई सृष्टि का अर्थ यह हुआ कि यह न ही पुराने क्रमों की नक़ल करती है न ही उनकी मौलिक सच्चाई के विपरीत जाती है। वह पुराने क्रमो की हमारे समझ को नए संदर्भों में ढालती है इसके साथ -साथ ज्ञान के आयाम को विस्तृत करती है" *४

अनुसन्धान की वैसे कई दिशाएं होती हैं परन्तु मुख्य रूप से तीन दिशाएं कही जा सकती हैं -

1. अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण (तथ्यानुसन्धान)
2. उपलब्ध तथ्यों या सिद्धांतों का नवीन आख्यान (तथ्यख्यान या पुनराख्यान)
3. ज्ञान क्षेत्र का सीमा विस्तार, अर्थात ज्ञान क्षेत्र में सर्वथा नवीन किसी मत, विचार या गुण की मौलिक स्थापना। *5

साहित्य एक सामाजिक विषय है। इसलिए साहित्य में किये गया अनुसन्धान की प्रकृति और निष्कर्ष वैसा नहीं होता जैसा कि वैज्ञानिक अनुसन्धान में होता है। साहित्यिक अनुसन्धान उस तरह का है जैसे एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाकर रख दिया है, एक अनुसन्धाता का विषय उस बनी हुई मूर्ति से सम्बंधित है। जैसे वह मूर्ति कब बनी, उसके बनाने की प्रक्रिया क्या थी, उसे बनाने में किन-किन तत्वों का प्रयोग किया गया, उन तत्वों का देशकाल परिस्थितियों से क्या सम्बन्ध है आदि। अर्थात उसकी शिल्प प्रक्रिया का उदघाटन करना। जबकि उस मूर्ति को देखने पर कुछ प्रक्रिया का ज्ञान तो हो जाता है पर विस्तृत नहीं इसलिए हम कह सकते हैं - "महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाली किसी अंशतः ज्ञात विषय का वैज्ञानिक विधि से किया गया निष्कर्षमूलक एवं मानव चेतना का संवर्धक अध्ययन साहित्यिक अनुसन्धान है।"*6

वैज्ञानिक विषयों में शोधार्थी को छोटे- छोटे तत्वों तथा प्रक्रियायों के तार्किक क्रम से होते हुए निष्कर्ष पर पहुँचाना होता है। अर्थात उनको (मूर्ति को अगर निष्कर्ष माने तो) छोटे -छोटे तत्वों (ईंट, मसाला, लोहा आदि) को इकट्ठा करके निर्माण की एक निश्चित और वैज्ञानिक प्रक्रिया के तहत अंत में मूर्ति के रूप में निष्कर्ष तक पहुंचते हैं। इनके निष्कर्ष वस्तुमूलक होते हैं। वैज्ञाननिक अनुसन्धान का सम्बन्ध मानव के भौतिक जिजीविषा से होता है। जबकि साहित्यिक अनुसन्धान मानव की अनुभूतियों, भावनाओं, अंतःप्रवृतियों से होता है। "... सहित्यिक तथ्यों का सम्बन्ध मानव जीवन से रहता है, क्योंकि साहित्य, मानव जीवन और मानव विज्ञान की विविध क्षेत्रीय विद्याओं के वैचारिक पक्ष तथा विविध ज्ञात एवं अज्ञात अनुभवों और भावनाओं के समुदाय को आधार बनाकर चलना है। "*7 अतः वैज्ञानिक अनुसन्धान आगमनात्मक विधि का प्रयोग तथा साहित्यिक में निगमनात्मकविधि का प्रयोग होता है।

साहित्यिक शोध में शोधार्थी कृति (रचना) के तत्वों का उद्घाटन करता है। "अध्येता जब किसी विषय के संघटक अवयवों की खोज करता और विश्लेषण कर उसके रचना रहस्य को प्रकाश में लाता है, उसका कार्य शोध है"*8 तथा साहित्य जगत में उस रचना के विषय में मौजूद समझ में इजाफा करता है। अगर वह अपने शोध के द्वारा अबतक मौजूद समझदारी में कुछ जोड़ता नहीं तो उसका अनुसन्धान अमान्य माना जायेगा। जैसे - अब तक यह स्थापित है कि कालिदास भारतीय संस्कृत साहित्य में उपमा अलंकार के सर्वश्रेठ प्रयोक्ता के तौर पर माने जाते हैं यह हमें ज्ञात है और अगर कोई शोधार्थी अपने शोध से तार्किक आधार पर यह सिद्ध कर दे कि कालिदास उपमा अलंकार का जितना सर्वश्रेष्ठता से प्रयोग करते थे उतना ही उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार का भी करते थे, इसलिए उन्हें न केवल उपमा के लिए जानना चाहिए अपितु उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का भी सर्वश्रेठ प्रयोक्ता के रूप में भी जानना चाहिए। तो निश्चित ही वह शोधार्थी कालिदास के विषय में अब तक मौजूद समझ में विकास किया है। अतः उसका शोध एक मान्य साहित्यिक शोध है। अगर वहीं वह शोधार्थी यह सिद्ध करता कि कालिदास उपमा अलंकार के संस्कृत में सर्वश्रेठ प्रयोक्ता हैं तो माना जाता उसका अनुसन्धान निरर्थक है क्योंकि यह तथ्य पहले से मौजूद है। इसीलिए कहा जाता है की अनुसन्धान के पूर्व शोधार्थी को पूर्व अनुसन्धान करना पड़ता है कि जिस क्षेत्र में वह कार्य करने जा रहा है उस क्षेत्र में कितना कार्य हो चुका है। "स्थूल अर्थों में वह नवीन और विस्मृत तत्वों काअनुसंधान है जिसको अंग्रेजी में 'डिस्कवरी आफ फैक्ट्स' कहते हैं। और सूक्ष्म अर्थ में वह ज्ञात साहित्य के पुनर्मूल्यांकन और नई व्याख्याओं का सूचक है।"*9

साहित्यिक अनुसन्धान के निम्न प्रकार हो सकते हैं -

१ आलोचनात्मक पद्धति (तथ्यख्यानपरक)

२ तुलनात्मक पद्धति

३ सर्वेक्षण पद्धति (तथ्य संग्रह, क्षेत्रीय अध्ययन, लोक संस्कृति, भाषा आदि।)

४ कालखण्डपरक या ऐतिहासिक

५ वर्गपरक पद्धति

६ शास्त्रीय या सैद्धांतिक पद्धति

७ पथ निर्धारण एवं अर्थ निर्धारण (कोश आदि पद्धति)

८ भाषा वैज्ञानिक पद्धति *10

शोध कार्य एक सूझबूझ, धैर्य एवं तकनीक से युक्त कार्य है इसलिए "शोध कार्य करने से पूर्व हमें अपनी रूचि तथा उससे सम्बंधित कार्यक्षेत्र से अवगत होना चाहिए।"*11 रुचिपूर्ण कार्य मिलाने पर शोधार्थी को उस कार्य में आनंद प्राप्त होता है और उसे शोध कार्य भार नहीं महसूस होता और गुणवत्तापूर्ण शोध आसानी से पूरा हो जाता है। शोध निर्देशक का चयन एक शोधार्थी और उसके शोध के लिए खास होता है। क्योंकि शोधार्थी जिस विषय क्षेत्र, में काम करना चाहता है शोध निर्देशक को भी उस क्षेत्र का विशेषज्ञ होना चाहिए ऐसा न होने पर शोधार्थी और उसके विषय दोनों के प्रति न्याय नहीं हो पता क्योंकि शोध कार्य एक जटिल और अंधकारमय मार्ग होता है जो एक अच्छा और योग्य निर्देशक की मांग करता है जिससे शोधार्थी सहजता से उस मार्ग पर बढ़ सके। एक शोधार्थी को विषय निर्वाचन का भी ध्यान रखना चाहिए। विषय ऐसा होना चाहिए जिसमें कोई समस्या हो तथा जिसकी साहित्य में उपयोगिता हो। अपने विषय के मूल समस्या से शोधार्थी को अवगत होना चाहिए जिससे वह शोध मार्ग पर आत्मविश्वास के साथ बढ़ सके जब तक उसे अपनी समस्या का ठीक से पता नहीं होगा तब तक उसका परिश्रम निरर्थक होगा। एक अनुसंधित्सु को तथ्य क्या है पता होना चाहिए। क्योंकि तथ्यों के माध्यम से ही अनुसन्धाता अपने लक्ष्य तक पहुंचता है। अनुसन्धाता को यह जानना चाहिए कि "अनुसन्धान में सत्य का अन्वेषण मूल लक्ष्य है। सत्य तक पहुँचने के लिए तथ्यों का पता लगाना और उनका संग्रह करना पड़ता है। ... तथ्य मार्ग है सत्य गंतव्य"*12 एक बात पर बराबर ध्यान देना चाहिए की कहीं तथ्यों की अधिकता न हो जाय, नहीं तो शोध प्रबंध बोझिल हो जाता है तथा तथ्यवाद का आरोप भी लगने लगता है। तथ्य के केवल वर्णन से शोध में मौलिकता बहुत कम आती है। शोधार्थी को मौलिकता लाने के लिए तथ्यों पर चिंतन करना चाहिए उनके बीच संबंधों को ढूढ़ना चाहिए जीवन के अनुभवों से उस चिंतन प्रक्रिया को जोड़ने से मौलिकता आती है। नए - नए उदहारण भी सूझ पड़ते हैं जो मौलिक होते हैं इस प्रकार मौलिकता एकांत चिंतन, का परिणाम होता है जो मानसिक और ऐकान्तिकता की मांग करता है।

शोधार्थी को अपनी रूचि अनुसार विषय क्षेत्र तथा शोध निर्देशक चुनने के बाद विषय की रूपरेखा का निर्धारण की स्थिति आती है इसका महत्त्व इतना है की इसके आभाव में शोधार्थी जंगल में भटका हुआ पथिक हो सकता है जिसे निकलने का मार्ग नहीं मालूम है। अतः शोधार्थी को विषय की रूपरेखा का निर्धारण स्वयं एवं निर्देशक की सहायता से बना लेना चाहिए जिससे शोष मार्ग स्पष्ट और सहज रूप से दिखाई दे।

सामग्री संकलन कार्य भी महत्वपूर्ण एवं तकनीक युक्त है। यह भी एक योजना के तहत किया जाना चाहिए चूंकि शोधार्थी को तथ्यों के चयन के बारें में पूरा विवरण अपने शोध प्रबंध में देना होता है इसलिए किसी पुस्तक, पत्रिका आदि पढ़ते समय जहाँ भी तथ्य मिले उसे उस कार्ड बोर्ड पर टीप लेना चाहिए तथा साथ में उसका निम्न विवरण भी टीपना चाहिए- "पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन संस्था का नाम तथा नगर, पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण एवं प्रकाशन का सन"*13 कार्ड बोर्ड को भी अपने शोध की रूपरेखा के अनुसार अध्यायों एवं उप-अध्यायों में विभक्त कर लेना चाहिए। पुस्तक पढ़ते समय जिस भी अध्याय से सम्बंधित तथ्य मिले उसे उस अध्याय के कार्ड बोर्ड पर लिख लेना चाहिए। एक बात ध्यान रखना चाहिए, कार्ड बोर्ड पर तथ्य लिखते समय जो कुछ उस तथ्य के बारे में समालोचना उस समय मस्तिष्क में आये वहीं लिख लेना चाहिए क्योंकि उस क्षण के वे विचार जो लिखते समय आते हैं वे बाद में आएंगे ही, कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। कुछ शोधार्थी कार्डबोर्ड की जगह एक नए नोटबुक में लिखते हैं। यह एक गलत तरीका है ऐसा नहीं कहा जा सकता लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता की प्रबंध लेखन के समय ज्यादा परेशान यही शोधार्थी होते हैं क्योंकि बार-बार पेज उलटकर अलग अलग अध्यायों की सामग्री देखते-देखते उनका जी जल्दी उचट जाता है और परेशान होते हैं। कार्डबोर्ड बनाने का एक फायदा यह भी रहता है कि कभी कभी- दुर्भाग्य से शोध प्रबंध के चोरी हो जाने पर तथा दूसरे व्यक्ति द्वारा अपने नाम से छपवा लिए जाने पर पता चलते ही उसके खिलाफ कोर्ट में मुक़दमा किया जा सकता है और अपने लिए सबूत के तौर पर यही कार्डबोर्ड या नोटबुक विजय प्राप्त करवाते हैं। इसलिए शोधार्थी को इस कारण भी सावधान रहना चाहिए।

शोधार्थी में ताथ्यिक ईमानदारी होना परम आवश्यक है। कई बार शोधार्थियों को देखा जाता है कि किसी पुस्तको के तथ्यों को लेकर अपना बना लेते हैं अथवा दूसरे विद्वानो के तथ्यों को भूलवश अन्य विद्वानो का बना देते हैं। इससे बचना चाहिए। यह क्रियाकलाप दो दृष्टियों से घातक है एक इससे शोध प्रबंध में अप्रामाणिकता का कलंक लगता है तथा शोधार्थी की भी छवि ख़राब होती है। दो भविष्य में आने वाली पीढ़ी जो उस शोध प्रबंध को आधार मानकर आगे शोध करेगी, गलत तथ्यों का चयन करेगी इस प्रकार ताथ्यिक ईमानदारी का आभाव विकृत शोध परम्परा का बीज होता है। इससे शोधार्थी, भावी शोधार्थियों, देश, समाज, आदि सबका हानि होता है।

उद्धरण देने के पीछे शोधार्थी के कई उद्देश्य होते हैं। अपने मत के पुष्टि हेतु, अन्य मतों के खंडन हेतु, दो मतों या कई मतों में से अपनी मत के अनुसार चयन हेतु आदि। उद्धरण देते समय कुछ सावधानियां बरतना अतिआवश्यक होता है। जैसे - उद्धरण बिलकुल वैसा ही होना चाहिए जैसा की मूल पुस्तक में है, अर्थात कामा/अल्पविराम (,) की भी गलती नहीं होनी चाहिए। साथ ही उससे सम्बन्धी सूचना भी [लेखक, ग्रंथनाम,संस्करण, पृष्ठसंख्या, प्रकाशन पृष्ठ] सही होना जरूरी है किसी लम्बे उद्धरण को संक्षेप करने के लिए शोधार्थी को अप्रासंगिक भाग को छोड़कर लोप बिंदु रेखा जिसकी सख्या तीन होती है (...) का प्रयोग करना चाहिए। अगर उद्धृत अंश वाले मूल पुस्तक में कोई भूल होती है तो उसे कोष्ठक में दे देना चाहिए या पाद-टिप्पणी में यह बता देना चाहिए की त्रुटि अपनी नहीं, मूल की है। अत्यंत लम्बे उद्धरणों को देने के लिए शोधार्थी को उसे संक्षिप्त बनाना आना चाहिए। इसके लिए उसे चाहिए कि उस उद्धरण को ध्यान से पढ़कर मूल विचार को कम पंक्तियों में लिख देना। अगर इस प्रकार के संक्षेपण से भाव प्रकट या विश्लेषण में बाधा प्रतीत हो तो पूरा उद्धरण परिशिष्ट में भी दिया जा सकता है यह विचरणीय है कि-"...केवल उद्धरण दे देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि अपनी स्थापना की अनुरूपता में उनका विवेचन ही विषय की गति का मापदंड है।" *14

शोध-प्रबंध में सन्दर्भ सूचना देने की दो विधियां हैं- एक हर एक पृष्ठ के लिए अलग उर्ध्वंक देकर उससे सम्बंधित सूचनाएं उसी पृष्ठ में नीचे दी जाती हैं। जिसे पाद-टिप्पणी कहते हैं इससे फायदा यह है की प्रत्येक पृष्ठ के सन्दर्भ उसी पर रहते हैं जिससे पाठक को पढ़ने में सुविधा होती है। बार बार पन्ना नहीं पलटना पड़ता। टंकण के समय हर पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी होने से टंकण में कठिनाई होती है। दो पूरे अध्याय में आने वाले सन्दर्भों को क्रमिक उर्ध्वंक देकर अध्याय के अंत में दे दिया जाय। इससे पाठक को असुविधा होती है उसे बार-बार पन्ना पलटना पड़ता है। तथा उसके पाठन में कमी होती है। इससे टंकणकर्ता को सुविधा होती है। एक और असुविधा उद्धरणों की संख्या अधिक हो तो उर्ध्वंक एक सौ, दो सौ से ऊपर चले जाते हैं जिससे लिखने में अच्छा नहीं लगता। अगर कोई नया उद्धरण जोड़ना हो तो सभी उर्ध्वन्को को बदलना पड़ता है। इस दृष्टि से पाद-टिप्पणी में सुविधा होती है।

पाद टिप्पणियों में लेखको/लेखक का नाम सीधे रूप में ही दिया जाता है। यदि

स्रोतग्रन्थ के रूप में किसी ग्रन्थ का उपयोग एकाधिक बार किया जाता है तो प्रत्येक बार प्रकाशनों को लिखने की आवश्यकता नहीं होती। केवल एक बार लिखना जरूरी होता है। य़दि सूचना कोष्ठगत न हो और स्रोत ग्रन्थ सम्पादित अथवा अनूदित रचना हो (एक ही लेखक के द्वारा) तो 'संपा0' शब्द का प्रयोग ग्रन्थ शीर्षक से पहले किया जाता है। प्रत्येक पाद - टिप्पणी के अंत में पूर्णविराम का प्रयोग करना चाहिए इस सम्बन्ध में खड़ी पाई (।) की जगह बिंदु लगाना (.) अधिक सांगत हो गया है। अगर किसी पुस्तक के दो लेखक हों तो उनका पाद - टिप्पणी में विवरण देते समय दोनों लोगों का नाम लिखकर कामा से अलग कर देंगे फिर पुस्तक का नाम लिखते है। अगर तीन अथवा अधिक लेखक हों तो प्रथम लेखक का नाम 'तथा अन्य' लिखा जाता है। फिर कॉमा लगाकर पुस्तक का नाम लिखते हैं, प्रकाशन सम्बन्धी सूचना पुस्तक का नाम लिखने के तुरंत बाद कोष्ठक में प्रकाशन स्थल को लिखते हैं फिर कोलन (:) लगाकर प्रकाशन का नाम तथा फिर कॉमा लगाकर प्रकाशन वर्ष लिखते हैं।

पाद -टिप्पणी में प्रत्येक स्रोत ग्रन्थ के संस्करण का उल्लेख करना अनिवार्य होता है। लेकिन जिन ग्रंथों का संस्करण प्रथम नहीं है उनका उल्लेख अतिआवश्यक है। यदि शोधार्थी संस्करण का उल्लेख नहीं करता तो इसका अर्थ यही समझा जाता है कि उसने प्रथम संस्करण ही प्रयुक्त किया है। यदि किसी ग्रन्थ का प्रकाशन वर्ष नहीं है तो संस्करणोउल्लेख अनिवार्य है। यदि दोनों नहीं है तो शोधार्थी को कोष्ठक में प्रकाशन स्थल लिखने क बाद, कोष्ठक के बहार 'ति० न०' (तिथि नहीं) लिखकर इस बात का संकेत करना जरूरी होता है। अगर सम्पादित ग्रन्थ है तो सर्वप्रथम संपादक का नाम फिर 'संपा0' शब्द लिखेंगे फिर कॉमा लगाकर ग्रन्थ का नाम फिर कोष्ठक में प्रकाशन स्थल, प्रकाशन वर्ष का उल्लेख पूर्व की भांति करते हैं। अगर लेखक सम्पादकेतर हो अर्थात जब उद्धरण के अंश का लेखक संपादक न होकर कोई अन्य हो तो लेखक के रूप में उसीका उल्लेख किया जाना चाहिए। उद्धरण सम्बन्धी लेख शीर्षक को को भी डबल इन्वर्टेड कॉमा में देना होता है। तदन्तर ग्रंथशीर्षक का उल्लेख करके फिर 'संपा0' शब्द कोष्ठक में लिखकर ग्रन्थ के संपादक का नामोल्लेख होता है। फिर प्रकाशन सम्बन्धी विवरण पूर्व की भांति होता है जैसे -विजयेंद्र स्नातक,"नीरजा",महादेवी,इंद्रनाथ मदान (संपा०), (राधाकृष्ण प्रका0, दिल्ली, १९७३)*15

अनूदित ग्रंथों से अगर उद्धरण लिए गए हों और उद्धरण स्वयं अनुवादक से सम्बंधित हो तो सीधे ही लेखक रूप में उसका नाम लिखा जाता है उसके पश्चात 'अनु०' शब्द को कोष्ठक में लिखना होता है। लेकिन 'अनु०' शब्द और अनुवादक के नाम के बीच कॉमा नहीं रहेगा। यदि उद्धरण मूल लेखक का है तो लेखक के रूप में उसका नाम पहले आता है। उसके बाद कॉमा लगाकर पुस्तक का नाम और फिर अनुवादक के नाम के बाद 'अनु०' शब्द कोष्ठक में देना होता है फिर दूसरे कोष्ठक में प्रकाशन सम्बन्धी सूचना देनी होती है। अगर भूमिका से उद्धरणांश है तो प्रकाशन विवरण के बाद कॉमा लगाकर भूमिका लिखते हैं, फिर कॉमा लगाकर पृष्ठ संख्या लिखते है।

बहुखण्डीय ग्रंथों का उल्लेख सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में करना होता है। लेकिन पाद - टिप्पणी में उसके प्रयुक्त किये जा रहे खंड की सूचना देनी होती है। जैसे - लेखक का नाम फिर कॉमा के बाद प्रयुक्त खंड (जैसे द्वि० खं 0) फिर कोष्ठक में प्रकाशन सम्बन्धी उल्लेख करते हैं। अगर पत्रिका लेख सम्बन्धी विवरण देना हो तो सर्वप्रथम लेखक का नाम फिर अल्पविराम के बाद डबल इनवर्टेड कॉमा में लेख के शीर्षक का नाम तदुपरांत अल्पविराम देकर पत्रिका का नाम फिर अल्पविराम के बाद पृष्ठ संख्या फिर कॉमा के बाद कोष्ठक में पत्रिका- अंक का उल्लेख (जैसे अप्रैल १९९७) करते हैं। पाद - टिप्पणी में अगर समाचार पत्र लेख का विवरण देना हो तो सबसे पहले लेखक का नाम फिर अल्पविराम के बाद डबल इन्वर्टेड कॉमा में लेख शीर्षक का नाम लिखना चाहिए, फिर कॉमा के बाद समाचार पत्र का नाम रेखांकित करके फिर कोष्ठक में प्रकाशन स्थल के बाद अल्पविराम लगाकर प्रकाशन दिन और सन का उल्लेख किया जाता है।

पाद - टिप्पणियों में लेखक /लेखकों का नाम सीधे रूप में लिखा जाता है जबकि संदर्भ ग्रन्थ सूची में लेखक का नाम उलटाकर (जाति नाम, उपनाम पहले प्रमुख नाम बाद में) दिया जाता है। अन्य सभी सूचनाएं उसी प्रकार दिया जाता है. परन्तु जहाँ कठिनाई आ सकती है उसका विवरण निम्न प्रकार से होगा एक उदहारण -

सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, (इलाहबाद:लोकभारती प्रकाशन, २०१४)।

किसी पुस्तक के अगर दो लेखक हों तो उनमे से केवल पहले लेखक का नाम ही उलटना चाहिए, दूसरे का नहीं, तीन या उससे भी अधिक की परिस्थिति में केवल प्रथम लेखक का उलटाया हुआ नाम देकर पाद - टिप्पणी की भांति 'तथा अन्य' का प्रयोग करना चाहिए। अगर पुस्तक कई खण्डों में है तो सन्दर्भ सूची में केवल प्रयोग किये गए खंड की संख्या ही लिखनी चाहिए। ग्रंथोल्लेख के पश्चात प्रकाशन सम्बन्धी सूचना में प्रकाशन स्थान, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन वर्ष इत्यादि को कोष्टकों में ( ) में लिखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ग्रन्थ के नाम और प्रकाशन सूचना के मध्य कोष्ठक का प्रारंभिक भाग '(' ही होना चाहिए। किसी अल्पविराम आदि की आवश्यकता नहीं है। सम्पादित ग्रंथों की विवरण देने की दो विधियां हैं -

1. संपादक का नाम उलटकर लिखा जाय फिर छोटे कोष्ठक में (संपा०) लिखा जाय फिर अल्पविराम देकर ग्रन्थ का नाम फिर प्रकाशन सम्बन्धी उल्लेख किया जाय।

2. अगर उद्धरणांश सम्पादित पुस्तक में सम्पादकेतर लेखक के लेख से लिया हुआ हो तो सर्वप्रथम लेखक का नाम उलटकर लिखने के बाद कॉमा लगाकर लेख शीर्षक को डबल इन्वर्टेड कॉमा में लिखते है तदन्तर कॉमा के बाद संपादक का नाम लिखकर कोष्ठक में 'सम्पा०' शब्द लिखते हैं। फिर कॉमा लगाकर ग्रन्थ का नाम, फिर कॉमा लगाकर कोष्ठक में प्रकाशन सम्बन्धी उल्लेख करते हैं जैसे-

स्नातक, विजयेंद्र," नीरजा", इंद्रनाथ मदान (सम्पा०), महादेवी, (दिल्ली: राधाकृष्ण प्रका०, 1973)। *16

कभी- कभी किसी ग्रन्थ का कोई एक लेखक नहीं होता। ऐसे ग्रन्थ प्रायः किसी सोसायटी, राजकीय विभाग, किसी विश्वविद्यालय इत्यादि में से किसी एक के द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं। संदर्भोल्लेख मे ऐसे ग्रंथों के रचनाकार के रूप में उसकी रचनाकार संस्था का उल्लेख करना चाहिए। पत्रिका या समाचार पत्र का संदर्भ देने के लिए लेखक का नाम उलटकर लिखना चाहिए बाकी पाद- टिप्पणी में जैसा उल्लेख होता है, वैसा ही यहाँ भी कर देना चाहिए

पुस्तक समीक्षा का संदर्भोल्लेख करने के लिए सर्वप्रथम मूल लेखक का नाम उलटकर फिर कॉमा के बाद ग्रन्थ शीर्षक का नाम डबल इन्वर्टेड कॉमा में लिखते हैं तदुपरांत कॉमा फिर समीक्षक का नाम बिना उलटकर लिखते हैं लिखते हैं उसके नाम के आगे छोटे कोष्ठक में 'समी०' अर्थात समीक्षक लिखते हैं। फिर पत्रिका का नाम रेखांकित करके लिखते हैं तदुपरांत अल्पविराम देकर कोष्ठक में प्रकाशन सम्बन्धी उल्लेख करते हैं। यथा -

सिंह, कुंवरपाल, "हिन्दी उपन्यास :सामाजिक चेतना", शशिभूषण सिंघल (समी०) संभावना, (कुरुक्षेत्र: हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय अप्रैल-जुलाई, १९७७) ।*17

शोधार्थियों को कभी-कभी विशेषज्ञों से साक्षात्कार भी लेने पड़ते हैं। जिसका उल्लेख अपने प्रबंध में शोधार्थी करते हैं लेकिन संदर्भ ग्रन्थ सूची में उसका उल्लेख अग्रलिखित प्रकार करते हैं - सबसे पहले विशेषज्ञ का नाम उलटकर लिखते हैं, फिर विशेषज्ञ का पद अथवा वर्तमान पता, उसके बाद 'साक्ष0' (साक्षत्कार का संक्षिप्त रूप) लिखना पड़ता है। फिर साक्षत्कार का स्थान, फिर साक्षत्कारकर्ता का नामोल्लेख होता है। उसके बाद साक्षत्कार तिथि,फिर डबल इन्वर्टेड कॉमा में साक्षत्कार का मुख्य विषय होता है यथा-

प्रसाद गोबिंद, जवहरलालनेहरू विश्वविद्यालय, भारतीय भाषा केंद्र, नई दिल्ली (साक्ष ०), नई दिल्ली, यशवन्त प्रजापति, १५ जून २०१५, "प्रगतिशील कविता "।

(यह ध्यान रखना चाहिए की सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची अकारादि क्रम में ही होना चाहिए।)

प्रबंधन लेखन के अंत में उपसंहार लिखा जाता है। इसमे शोधार्थी अपने प्रबंध का आलोचनात्मक अध्ययन करता हुआ निष्कर्ष का अवलोकन करता है। विभिन्न अध्यायों में विभक्त विषय को एवं बड़े ही सावधानीपूर्वक संक्षिप्त रूप से वर्णन करते हुए उनमें तारतम्यता के साथ निष्कर्ष प्रस्तुत करता है इस तरह सम्पूर्ण शोध का छोटा सा रूप उपसंहार में दिखाई देता है।

अनुक्रमणी का उल्लेख हिंदी के शोधार्थी प्रायः नहीं करते पर इसका अपना अलग महत्व होता है प्रबंध लेखन के समय शोधार्थी अनुक्रमणिका की सहायता से अनेक ग्रंथों से उपयोगी स्थलों को खोज कर लिख लिया होगा। इसमें शोध में विवेचित सभी स्थापनाओं, संदर्भ ग्रंथों और लेखकों का यह उल्लेख रहता है कि वे प्रबंध में किस पृष्ठ पर आये और विवेचित हुए हैं। इधर पाद -टिप्पणी और संदर्भ ग्रन्थ सूची के स्वरूप को देखते हुए "माडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन ऑफ़ अमेरिका, न्यूयार्क द्वारा पहले १९५१ में प्रकाशित और १९७० में संशोधित शैली नमूने के पत्र (स्टाइल शीट) में प्रकट संदर्भ सूचना की रीति अपेक्षाकृत सरल है और अब शोध -ग्रंथों और शोध पत्रिका में विश्वव्यापक रूप में स्वीकृत है" ।*18

भारत में पत्रिका -पत्रिकाओं और ग्रंथों में किया जा रहा है। अगर सभी एक नियम का पालन करें तो वह मानक रूप में सहायक होगा है। इनमे न तो उर्ध्वंक का प्रयोग होता है और न ही पाद टिप्पणी की। इस नियम में उद्धरण को लिखते समय ही कोष्टक, पृष्ठ संख्या, प्रकाशन वर्ष तथा लेखक का नाम दे दिया जाता है और प्रबंध के अंत में सहायक ग्रन्थ सूची में उद्धरण सम्बन्धी विवरण दिया जाता है। जैसे -

1. प्रेमचंद के यथार्थवाद और आदर्शवाद के बारें में हंसराज 'रहबर' (१९५२ :२६५) कहते हैं, 'चुकि वे स्वभाव से प्रगतिशील थे, इसलिए उन्होंने पाश्चत्य सभ्यता और साहित्य से यथार्थवाद लिया। ... जोड़ दी।'

2. वस्तुतः साहित्य मानव जाती के समस्त अनुभूति भंड़ार का लिपिबद्ध रूप है (जैनेन्द्र कुमार :१९५३:२०)*19

इनका सहायक ग्रन्थ सूची में निम्नलिखित प्रविष्टियाँ होंगी -

1. हंसराज 'रहबर': १९५२: प्रेमचंद जीवन और कृतित्व, दिल्ली, आत्माराम एंड सन्स।

2. जैनेंद्र कुमार: १९५३: साहित्य का श्रेय और प्रेय, दिल्ली, पूर्वोदय प्रकाशन। *20

लेखन के पूर्व शोधार्थी को कुछ बातें ज्ञात होना चाहिए जैसे उसे किसी भी सिद्धांत के प्रति पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए क्योंकि अनुसन्धान का मार्ग सत्य को जाता है और इस मार्ग में अनुसंधित्सु को निरपेक्ष होकर जाना पड़ता है। अनुसन्धान में शोध- प्रबंध लेखन की विशेषता सामान्य ग्रन्थ लेखन से अलग होती है इसमें कई नियमों का पालन करना पड़ता है' किसी विचार का प्रतिपादन करते समय उसे आप्त अथवा प्रमाणिक कथनो से पुष्ट करना आवश्यक होता है। शोधार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी मान्यताओं के प्रतिपादन में किन्ही मान्य ग्रंथों का हवाला दे।' *21 लेखन की भाषा भी जटिल या दुरूह नहीं होना चाहिए। व्याकरणिक त्रुटियों से बचना चाहिए। विचारों का क्रम ऐसा होना चाहिए कि वाक्य दर वाक्य विचार खुलते जायं ताकि उनकी तारतम्यता न टूटे। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि शोध प्रबंध की भाषा निबंध लेखन की भांति सुगठित एवं स्पष्ट होनी चाहिए।

संदर्भ

1. जैन, कुमार, रविन्द्र, साहित्यिक अनुसन्धान के आयाम, दू० संस्क० (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८०) पृ० ५.
2. शर्मा, विनयमोहन, शोध - प्रविधि, (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८०) पृ ० ३.
3. गणेशन, एस० एन०, अनुसन्धान की प्रविधि सिद्धांत और प्रक्रिया, (इलाहाबाद : लोकभारती प्रका०, २००१).
4. शर्मा, विनयमोहन, शोध - प्रविधि (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८०) पृ ० ४.
5. जैन,कुमार, रविन्द्र,साहित्यिक अनुसन्धान के आयाम (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1980) पृ ० ३६.
6. वही. पृ ० २२
7. सिंहल, बैजनाथ, शोध :स्वरूप एवं मानक कार्यविधि (नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, १९९४) पृ ० ९१.
8. सिंहल, शशिभूषण, साहित्यिक शोध के आयाम (नई दिल्ली आर्य बुक डिपो, १९७८) पृ ० १.
9. द्विदेदी, आचार्य, (डॉ 0) हजारीप्रसाद, "शोध सामग्री", अनुसन्धान की प्रक्रिया, डॉ० सावित्री सिन्हा : डॉ० विजयेंद्र स्नातक (संपा०), दू० संस्क० (दिल्ली :नेशनल पब्लिशिंग हाउस).
10. जैन कुमार, रविन्द्र, साहित्यिक अनुसन्धान के आयाम, (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८०) पृ० २२-२३.
11. सिंहल, शशिभूषण,साहित्यिक शोध के आयाम (नई दिल्ली: आर्य बुक डिपो, १९७८) पृ ० ९३.
12. पाण्डेय, डॉ० राजबली, "अनुसन्धान की प्रक्रिया और प्राविधि", अनुसन्धान की प्रक्रिया, डॉ० सावित्री सिन्हा: डॉ०विजयेंद्र स्नातक (संपा०), (दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस).
13. सिंहल, शशिभूषण, साहित्यिक शोध के आयाम (नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो, १९७८) पृ ० १०३.
14.सिंहल,बैजनाथ,शोध :स्वरूप एवं मानक कार्यविधि (नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन १९९४) पृ ० १०२.
15. वही ०, पृ ० ११६.
16. वही ०, पृ ० १३०.
17. वही ०, पृ ० १३६.
18. गणेशन, एस ० एन ०, अनुसन्धान प्रविधि सिद्धांत और प्रक्रिया, (इलाहाबाद :लोकभारती प्रकाशन, २००१).
19. वही०, १८२.
20. वही०, १६३.
21. सिंहल, (डा०) शशिभूषण, साहित्यिक शोध के आयाम (नई दिल्ली : आर्य बुक डिपो, १९७८) पृ ० ११३.